

जैनेन्द के उपन्यासों में महिलाओं पर सामाजिक अत्याचार पर एक अध्ययन

Shikha, Research Scholar

Sri Satya Sai University of Technology & Medical Sciences, Sehore, M.P.

Dr. Tabssum Khan, Professor

Sri Satya Sai University of Technology & Medical Sciences, Sehore, M.P.

जैनेन्द समाज की प्रधान विसंगति समझते हैं एवं उसे उपन्यासों में स्वर देना महत्वपूर्ण समझते हैं ताकि समाज अपने त्रुटि-स्थानों को समझ सके। और वह विसंगति क्या है? आदर्श की कोमल संवेदनशीलता तथा समदर्शिता एवं व्यवहार की कठोर स्वार्थपरकता, निर्दयता एवं समानता व प्रायश्चित को न स्वीकार कर पाने वाले बलवान ढकोसले।

दहेज की प्रताड़ना सत्य पर अनैतिक लांछन लगाकर परित्यक्त पत्नी मृणाल द्वारा आत्म हत्या को पाप समझकर समाज में अपने संवर्ग से नीचे तबके के कोयले वाले से सामाजिक रीति से अमान्य संबंध द्वारा जीवनयापन को विवश देखकर उसका भतीजा उसे बालकवत् पहले की तरह देखना समझना एवं समाज के ऊँचे स्थान पर उठाना चाहता है। उसके ऐसा सोचने में न तो अनैतिकता है और न ही ऐसा कर पाने में व्यवधान उत्पन्न करने वाले सामाजिक कारकों के प्रति महत्व-दृष्टि। फिर भी समाज को सर्वांगीण सुन्दर एवं समुन्नत ब ना देने वाले उन बालकवत् निश्छल विचारों को हाय! सामाजिक क्रूर मानरूताओं के मिथ्या अहं सेवित स्वार्थ पंजों में दम तोड़ता देखकर भी, कोई इसे समाज का दोष— सातत्य नहीं कहता, पर व्यक्ति द्वारा

किये गये एककालिक दोष को जबरन सार्वकालिक बनाकर भी, उस व्यक्ति की दोषरूपता का बार-बार एवं कई प्रकार से प्रतिपादन करता है। जैनेन्द्र समाज की इन दोष-रीतियों को कथानकों के माध्यम से सोदाहरण सिद्ध करके उसे आत्ममंथन, प्रायश्चित एवं सुधारवादी परिवर्तन का अवसर देना चाहते हैं वहाँ जैनेन्द्र का तक्र होगा कि यदि परमात्मा भी पापी से पापी का भी उद्धार कर देता है तथा सामाजिक व्यक्ति का भी लक्ष्य यदि परमात्मा है तो वह भी पाप से उत्थान का व्यक्ति को अवसर क्यों नहीं देता बल्क उसे पापी है!! पापी है! इस प्रकार पाप संवर्ग में हमेशा के लिए संस्थापित कर उसके उत्थान का सारा रास्ता बंद कर देता है। क्या यह समाज का और भी गुरुतर पाप नहीं है? क्या एक बार चोरी कर कोई साधू सदैव के लिए चोर बन जाता है, फिर उसके सुधार को कोई उपाय न होना चाहिए।

जिस समाज ने यह परिस्थिति उत्पन्न की कि पतिता अपने स्वाभाविक व पूर्व स्थिति में वापस न आ सके उसके कारक व्यक्ति अपनी महत्ता के स्थान पर स्थिर रहे; लेकिन समाज के उन स्थिर-दोषी व्यक्तियों के चान्चल्य को अपने में ढोने वाली स्त्री अपने स्थान से सदैव के लिए नीचे गिरा दी गई यह समाज का कैसा भेद-भाव है यह उपन्यास के अलावा किस श्रेष्ठ माध्यम से समझाया जा सकता थ। जैनेन्द्र यहाँ भी समाज के पाप-पुण्य में अद्वैत दृष्टि का महत्व स्थापित करते हैं वे दिखना चाहते हैं कि कुलीन, संभ्रांत और नैतिक समझे जाने वाले व्यक्ति भी अपने जीवन के आंशिक काल में चंचल हो उठते हैं वहाँ चंचला नारियाँ उनके चान्चल्य से ग्रसित हो उठती हैं वे लाक्षणा का दुदैव भोगती है तथा पुरुष संभलकर पुनः अपनी महानता का सामाजिक

प्रदर्शन करने में लग जाता है तथा उन्हीं नारियों की आलोचना के भी योग्य बन जाता है, जबकि उन पुरुषों की चंचल दृष्टियों को अपने में झेल लेने तथा इस प्रकार अन्यान्य सभ्रांत नारियों को उन कटु सत्योद्घाटक दृष्टियों से बचा लेने वाली चंचलाओं के चांचल्य को भी उन तथाकथित नैतिक पुरुषों की आलोचनाओं के स्वर में भी क्या वस्तुतः पतिता मानना चाहिए। क ठोर शब्दों में जिन्हें हम पतिता मानते हैं वह हमारी बुराइयों को रोकने, सहने एवं छिपाने का पुण्य करके भी पापिनी है और उन्हें यह विशेषण आदर्श नैतिक व्यवहार न करने वाला यह समाज देता है तथा उपन्यास उसी अप्राप्त-लुप्त आदर्श को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। जैनेन्द्र ऐसे ही साहित्य को सार्थक कहते हैं जो अनुद्घाटित द्वन्द्वों की अद्वैतरूपता को हमारी दृष्टि के सम्मुख प्रस्तुत कर पाने में सफल होते हैं। त्यागपत्र में मृणाल कहती हैं—

..... पति को मैंने नहीं छोड़ा। उन्होंने मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री-धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती हूँ।
क्यों पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकर मैंने उसकी आँखों के सामने से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा— “मैं तेरा पति नहीं हूँ, तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है।”

यहाँ जैनेन्द्र विवाह को विशिष्ट निर्वाह या एक-व्यक्ति का दूसरे वपरीत लिंगी व्यक्ति के साथ वैयक्तिक परस्पर निर्वाह जो शरीर, मन समाज

एवं परमार्थ प्राप्ति अथवा धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष चतुर्विध तत्त्वों पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु परस्पर दायित्वबोध से बँधे हुए हो,के रूप में ही स्वीकार करते हैं। किसी जैविक ऐन्द्रिक पिपासा पूर्ति के लिएनहीं। जैनेन्द्र के अनुसार,

“समाज में स्त्री है पुरुष है, इसलिए समाज में उन दोनों का सहयोग न हो तो समाज कैसे होगा? हाँ समाज भावना केविकास में सहायक होकर वह सहयोग कर्तव्यरूप भी हो जाता है।”

“उक्त सहयोग को नीति द्वारा नियत-संयत करना पड़ता है, जिससे वह संयुक्त सामाजिकता की बढ़ती हुई भावना को मदद से,उसमें बाधक न हो। दाम्पत्य और परिवार आदि संस्थाएँ इसी राह में बनी, और बनी हुई है। इस प्रकार विवाह की संस्था सामाजिक हेतु से जन्मी है। “प्रेम के नाम पर साधरणतया जिस वलास का आशय लिया जाता है,वह विवाह की सार्थकता नहीं है। एक सामाजिक कर्तव्य की पूर्ति के अर्थ विवाह का विधान है।”

जैनेन्द्र अपने औपन्यासिक कथानकों के माध्यम से व्यावहारिक समाज में क्रमशः इस कर्तव्यगत भावना की कमी एवं अर्थ तथा काम का धर्म एवंपरमार्थ वस्तु (मोक्ष) के ऊपर महत्व स्थापित होना सभी अनर्थों की जड़ दिखाते हैं। रूपया अच्छा कर सकता है, खाराब भी कर सकता है, किन्तु खराब ही ज्यादा करता है क्योंकि रूपया विलासिता व अहं की सामग्री जुटाता है जिसे एकत्रित करने वाला कभी इसके सात्विक महत्व या लोक हितकर सदुपयोग करने के लिए अवरस ही नहीं पा पाता है। अन्यथा यदि ऐसा हो पाय तो बहुत कुछ नहीं, तो भी कुछ तो हो ही सकता है। यथा—

‘मैंने कहा— ‘बुआ अब लो। बस मैं लिवाने आया हूँ। बुआ चुप सुनती रही। बोली— ‘प्रमोद तुमने महाभारत तो पढ़ा है। युधिष्ठिर जी स्वर्ग गये तो कुत्ते को नहीं छोड़ गये थे। यह बता तेरा घर कितना बड़ता है— इन सबको ले चलेगा? ये कुत्ते नहीं हैं, और इनका मुझपर बड़ा उपकार है।.....

बुआ ने कहा— ‘तो यह बता,तेरे पास बहुत रूपया है? कितना रूपया है?

मैंने कहा— ‘‘रूपया!’’.....

बोली क्या करूँगी वह तो अभी नहीं जानती हूँ। पर..... खूब कमा और कमाकर सब इस गढ़्ढे में ला पटका कर। सुना कि नही? रूपये के जोर यह नक्रकुण्ड स्वर्ग बन सकता है ऐसा तो मैं नहीं जानती। फिर भी रूपया कुछ—न—कुछ काम आ सकता है।

समाज का सबसे बड़ा दोष है कि अधिकार और सुख—स्वार्थ सब चाहते हैं किन्तु कर्तव्य औश्र दायित्व निर्वहन को ई नहीं चाहता। रूपया दायित्व निर्वहन में नहीं लगता,व्यक्ति,अपना दायित्व छोड़ अनधिकृत सुख चाहता है! राजनीतिज्ञ दायित्व छोड़कर पालने लग जाती है तब तक परिवार टूट जाता है, इस प्रकार समाज दायित्व स्खलन के कारण रेतमहल की तरह भरभरा पड़ता है। राजनीति में कई दल हैं। दल के रूप में सब एक जैसे हो जाते हैं। जैसे हजारो निष्पक्षों के अअग—अलग पक्ष। पचासों असली का दावा ठोकने वालों में इक्यावनवाँ असली। उनकी भेरियों और भाषाओं को अलग—अलग पहचानना मुशिकल होता है। पर उनके तुमुल के नीचे सभ्यता और संस्कृति का द्वन्द्व चला करता है जिसे सभी धर्मयुद्ध का नाम देते हैं और कई भी धर्म की कसौटी पर पूर्ण नहीं है। एक नई प्राप्ति हुई है। वह उपलब्धि है आधुनिक

आर्थिक दृष्टि,आर्थिक सभ्यता। व्यवहार में ही नहीं हेतु तक में वह आर्थिक है....
 'किसको व्याहा जाय? उसको कि जो ज्यादा से ज्यादा धन लाये। लउकी
 दी जाय, उसको जो ज्यादा से ज्यादा कमाये। खेत में क्या बोया जाय, वह
 जो बिककर ज्यादा पैसा लाये। तम्बाकू? हाँ तम्बाकू नहीं अफीम, वह ज्यादा
 पैसा लाती है। अरे पैसा पास होगा तो गेहूँ खरीद करके डालने में क्या देर
 लगती है।... ओह आप! आप तो कॉलेज में थे फिलॉसफी के लेक्चरर। अब
 यह शराब का ठेका? मियाँ छोड़ दिया। क्या रखा था पढ़ाने में? वही
 फिलॉसफर जिसको पैसा।”

समाज व्यक्ति पर एक नैतिक दबाव बनाता है,यदि कोई टूट जाय,
 आत्महत्या कर ले, पलायनवादी हो जाय, हर हालत में स्वच्छन्द आचरण करना
 ही चाहे तो भी उसे अनैतिक अनुमति समाज नहीं देना चाहेगा अब स्थिति
 बचेगी कि व्यक्ति स्वच्छन्द आचरण करे तो या तो उसे छिपाकर,या उसे नैतिक
 सिद्ध करने की चेष्टा करते हुए। इस प्रकार जब उचित-अनुचित की मान्यता
 व परिभाषा के साथ खिलवाड़ होगा,तो एक ऐसी स्थिति संभव हो सकेगी जब
 कुछ भी किया जा सके एवं कोई सामाजिक अंकुश न हो! ऐसा धन के महत्व
 में वृद्धि होने से भी होता है। यदि अर्थ लाभ के लिए सरकार पान-मसाले,
 मदिरा एवं अन्य राष्ट्रघाती तत्वों को राष्ट्र में पनपने देगी तो ऐसा अन्य स्थलों
 पर भी करेगी। तब वह उचित-अनुचित के मानदण्डों में भी हेर-फेर करने के
 लिए अर्थ के अनुकूल परिभाषा गढ़ने को विवश हो जायेगी! तब ऐसी स्थिति
 आ जाएगी जब अराजकता, असामाजिकता, अतः इन सभी सामाजिक महत्व के
 क्षेत्रों की ओर से जैनेन्द्र अपने उपन्यासों के माध्यम से हमें पाठक को सावधान

करना चाहते हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारियाँ भी अपने आपके सामाजिक संदर्भों से हटाकर नहीं देखना चाहती।

यथा—

“मैं समाज को तोड़ना—फोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ।”

जो स्त्री से अपने को बचाता है..... वह सच से अपने को बचाता है। स्त्री झूठ नहीं है और पुरुष के लिए सच की चुनौती स्त्री के रूप में आती है।”

“संसार—स्त्री—पुरुषमय है। यह द्वित्व ब्रह्माण्ड भर में व्याप्त है। फिर विश्व एकदम घर्षणपूर्व दो क्यों नहीं हो जाता। क्या कारण यही नहीं कि उन दोनों के बीच स्नेह का कर्षण है दोनों उसी में सफल होने को विवश है।”⁸

इन्हीं सामाजिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में श्रीकांत वर्मा ने जैनेन्द्र कुमार के विषय में स्वीकार किया है कि— “जैनेन्द्र कुमार ने स्त्री को आजाद नहीं किया! मुक्ति नहीं दी। समाज सुधार जैनेन्द्र के उपन्यासों और कहानियों का कभी अभीष्ट नहीं रहा, लेकिन उन्होंने स्त्री को समाज के सामने उसकी विभीषिका के साथ पेश किया, पहचाना। यही वजह है कि आज भी हजारों लाखों स्त्रियाँ अपने आपको आइडेन्टिफाई करती हैं मृणाल के साथ, जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों की स्त्रियों के साथ, नायिकाओं के साथ। उनके साथ वो आज भी

आइडेंटिफाई नहीं कर पातीं, भारतीयस्त्रियाँ जो कि हमारे आधुनिक उपन्यासों और कहानियों की नायिकाएँ हैं।”

प्रायः जब कोई नई शैली में तत्व बोध कराना चाहता है तो या तो नव विश्लेषक उसमें उस तत्व का ही अभाव मान लेते हैं, अथवा बड़े कष्ट से उस तत्व का संकेत खोज पाते हैं। जैनेन्द्र की शैली मनोविश्लेषणवादी होने से समाज के सदस्यों के मन की अन्तर्वस्तु अधिक है,लेकिन यदि केवल इसी कारण से कोई यह अनुमान लगा ले किन उनके उपन्यासों में प्रेमचन्द के समाज समाज की विविध स्थितियों एवं समस्याओं के चित्र नहीं है, तो वह गलती करता है। ठीक है जैनेन्द्र के चित्र समाज के स्थूल विकृतियों के यथावत् चित्रांकन कम है। किन्तु जैनेन्द्र समाज की विसंगति एवं कुंठा का मूल उसके मौलिक घटक व्यक्ति में तथा उस व्यक्ति के भी अन्तर्मन की गुत्थियों में से पहले तक्र बल पर खोज निकालते हैं फिर बड़े सफल शिल्पकार की तरह उन गुत्थियों को स्पष्ट करने वाली भूमिकाओं के साथ उन्हें पुनः औचित्यपरक कल्पना का आवरण पहनाकर सामाजिक कथानकों के फ्रेम में फिट कर देते हैं, किन्तु वहाँ नवीनता यह आ जाती है कि घटना से कथावस्तु तक बनते-बनते समाज में बहुत-सी घटनाएं एवं उनके मनो-भौतिक कारण जो भ्रमितः स्थिति में छपि से रहते हैं वे अपने कारणों सहित स्पष्ट होने लगते हैं तथा हम उन साहित्य शिल्प की प्रभा-प्रकाश में अपनी स्थिति एवं कर्तव्य संभावना को भी देख पाते हैं, यही जैनेन्द्र के उपन्यासों के सामाजिक-संदर्भों के प्रकाशन का नयापन है, किन्तु व्यक्तिवादी एवं मनोविश्लेषणवादी होने पर भी जैनेन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक महत्व केविविध संदर्भ अपने विशुद्ध रूप में हैं क्योंकि

उनके उपन्यासा जब गुत्थियों का रहस्य ही खोलने लगते हैं तो घटना की स्थूलता का वर्णन भला क्यों करेंगे?

“जैनेन्द्र सामाजिक जीवन के वाह्य यथार्थ की अपेक्षा व्यक्ति के आंतरिक जीवन को अपने उपन्यासों में प्रधानता देते हैं। परन्तु इसके साथ ही उनके उपन्यासों में सूक्ष्म अनुभावों को सर्जनात्मक स्तर पर व्यंजित करने का प्रयत्न है, अतः उनमें वातावरण का प्रयोग इसी स्तर का हुआ है। एक ओर उनके उपन्यासों का वातावरण सूक्ष्म आंतरिक भावों अन्तर्द्वन्द्वों तथा संवेदनाओं को व्यंजित करता है, तो साथ ही उसके प्रयोग में सर्जनात्मक चेष्टा भी है।”

जैनेन्द्र के विचार में साहित्य अब अधिकाधिक व्यक्तिगत होता जा रहा है, पहले वह अपेक्षाकृत समाजगत था। जैनेन्द्र ने यह भी स्वीकार किया है कि “समाज में दो तत्व काम करते हुए दीखते हैं। समाज के सब व्यक्ति न्यूनाधिका रूप में इन्हीं दो तत्वों के प्रतिनिधि समझे जा सकते हैं। एक ग्राहक है एक विकीर्णक। एक व्यक्तित्व शून्य एक सव्यक्तित्व। एक वह जो अपने भीतर ही केन्द्र का अनुभव करता है। दूसरा वह जो अपरिचालन के लिए अपने से बाहर देखने की अपेक्षा करता है। एक गतिशील है, दूसरा संवरणशील।

सन्दर्भ—ग्रन्थ सूची

1. ये और वे : जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, 7/8, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण—1954
2. समय समस्या और सिद्धान्त : जैनेन्द्र कुमार, (प्रश्नकर्ता—रामावतार), प्रकाशक—पूर्वोदय प्रकाशन, 7/8, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, प्र0सं0 1971

3. काम प्रेम और परिवार : जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, 7/8, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
4. कहानी अनुभव और शिल्प : जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
5. प्रेमचन्द एक कृती व्यक्तित्व : जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
6. समय और हम : जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
7. आधुनिक कथा साहित्य में नारी—स्वरूप और प्रतिमा, सम्पादक— डॉ0उमा शुक्ता एवं माधुरी छेड़ा, अरविन्द प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण, 1995
8. उपन्यास जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन—मनमोहन सहगल—साहित्य भारती, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976
9. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार,आशारानी ब्योरा—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986
10. हिन्द उपन्यास के सौ वर्ष— डॉ0 रामदरश मिश्र, प्रकाशन—गिरनार प्रकाशन,पिलार्जीगंज महेसाना (उत्तर गुजरात), प्रथम संस्करण, 1984
11. उपन्यास स्थिति और गति—चन्द्रकांत वाडिवडेकर—वाणी प्रकाशन—4697/5,21—ए, दरियागंज,नई दिल्ली 110002 द्वारा प्रकाशित,संस्करण 1993
12. जैनेन्द्र व्यक्ति कथाकार और चिन्तक—सम्पादक—बिपिन बिहारी भटनागर,नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली,प्रथम संस्करण—1965
13. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान—राम सुन्दर लाल, दीपक प्रकाशन, वाराणसी,1976

14. हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण—राज कमल बोरा—नमिता प्रकाशन,
महाराष्ट्र, 1972
15. जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा—रामरतन भटनागर—साहित्य प्रकाशन,
दिल्ली—प्रथम संस्करण—1958